



संपादक की कलम से.....

गीता शर्मा

साहित्य और प्रकृति का शाश्वत अनुबंध

साहित्य और प्रकृति का संबंध उतना ही पुराना है, जितना कि मानव चेतना का विकास। प्रकृति केवल नदी, पहाड़, पेड़-पौधों और आसमान का जड़ समूह नहीं है, बल्कि वह मानवीय भावनाओं की सबसे बड़ी मार्गदर्शक और संवाहिका है। आदिकाल से ही मानव ने अपनी खुशियों, दुखों, विरह और उल्लास को प्रकृति के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया है। कालिदास के 'मेघदूतम्' से लेकर छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की कविताओं तक, प्रकृति हमेशा साहित्य के केंद्र में रही है। प्रकृति ने लेखकों को न केवल शब्द दिए हैं, बल्कि उनके विचारों को एक अनोखी गहराई और संवेदनशीलता भी प्रदान की है।

आज का आधुनिक युग तीव्र शहरीकरण, मशीनीकरण और कंक्रीट के जंगलों का युग है। विकास की इस अंधी दौड़ में मनुष्य उस प्रकृति से दूर होता जा रहा है, जिसकी गोद में वह पला-बढ़ा है। ऐसे संकट के समय में साहित्य की भूमिका और अधिक प्रासंगिक हो जाती है। जब एक संवेदनशील

लेखक किसी नदी के सूखने का दर्द लिखता है, या किसी जंगल के कटने की चीख को पन्नों पर उतारता है, तो वह केवल शब्द नहीं बुन रहा होता, बल्कि समाज की सोई हुई चेतना को झकझोर रहा होता है।

प्रकृति का विनाश वास्तव में मानव संवेदनाओं और अंततः संपूर्ण मानव सभ्यता का विनाश है।

साहित्य हमें याद दिलाता है कि हम प्रकृति के स्वामी नहीं, बल्कि उसके एक छोटे से हिस्सेदार हैं। यदि हमें अपनी भावी पीढ़ियों के लिए एक जीवित और धड़कता हुआ समाज छोड़ना है, तो हमें साहित्य के माध्यम से प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और पर्यावरण संरक्षण के भाव को पुनर्जीवित करना होगा। प्रकृति को बचाना आज केवल एक वैज्ञानिक या प्रशासनिक मुद्दा नहीं रह गया है, बल्कि यह हमारी संस्कृति, हमारे साहित्य और हमारी मानवीय संवेदनाओं को बचाए रखने का अंतिम संघर्ष है।